Prof. Shashi Sharma, Principal
Professor, Department of Political Science
e-mail: prof.shashisharma@gmail.com

Political Sociology, PAPER VII

Course Content-12: 'Relationship between Politics and Society in India'

भारत में राजनीतिक प्रक्रियाएं : राजनीति और समाज के मध्य संबंध

(Political Processes in India: Relationship between Politics and Society)

भारत में राजनीति और समाजका संबंध :एक परिचय

(Relation of Politics and Society in India: An Introduction)

कैटलीन के शब्दों में, ''राजनीति संगठित समाज का अध्ययन है इसलिए राजनीति के अध्ययन को समाज से पृथक् नहीं किया जा सकता है।" अन्य राजनीतिक व्यवस्थाओं की भांति भारत में भी राजनीति और समाज दोनों परस्पर संबद्ध हैं।यह अध्याय भारत में राजनीति और समाज के मध्य मौजूद अन्तःक्रियात्मकता कीप्रस्तुतिकरता है।भारतीय राजनीति का समाजशास्त्रीय अध्ययन करने वाले विद्वानों में **आल्मंड कोलमैन रुडोल्फ एण्ड रुडोल्फ, रॉबर्ट एल. हार्डग्रेव, टिंकर एण्ड पार्क, रजनी कोठारी, योगेन्द्र सिंह, वी.आर. मेहता, घनश्याम शाह** आदि प्रमुख हैं।भारतीय राजनीति के आधारों की विवेचना करते हुए **मॉरिस जोन्स** ने कहा है कि ''नये राज्यों में राजनीति और समाज के बीच जो संबंध है वह पश्चिम के विद्यार्थियों के लिए एकदम नया और बहुत रोचक है, यदि ऐसी राजनीति (भारतीय राजनीति) का अध्ययन सामाजिक शक्तियों की ओर ध्यान दिये बिना किया जायेगा, तो वह एकदम अधूरा और गुमराह करने वाला होगा।''

भारतीय राजनीति की पृष्ठभूमि (Background of Indian Politics)

एक प्राचीन परम्पराबद्ध, संरचनाओं वाले बहुल और सभ्यतामूलक भारतीय समाज को तत्त्वतः समझने के लिए उसमें विद्यमान राजनीति के विविध आयामों की सही जानकारी अति आवश्यक है। आजादी के बाद से भारत का पारम्परिक समाज निरन्तर लोकतांत्रिक राजनीति के हाथों बदल रहा है। इस प्रक्रिया में राज्य की इकाइयों द्वारा समाज के परिवर्तन में मुख्य अभिकर्ता की भूमिका निभाई गयी है। लोकतांत्रिक राजनीति ने भारतीय समाज में राजनीतिक सहभागिता का बड़े पैमाने पर विस्तार किया जिसके परिणामस्वरूप समाजिक ढाँचे के अन्तर्गत निवास करने वाली निचली जातियां और उपेक्षित तबके राजनीति की मुख्य धारा से जुड़कर अपने वाज़िब हक़ की दावेदारियाँ करने लगे।

लम्बे समय तक ब्रिटिश हुकूमत के अधीन पराधीनता में पलने–बढ़ने व विकसित होने वाले समाज में विद्यमान् राजनीति सहयोग और विरोध दोनों तत्त्वों को अपने साथ लेकर चल रही है। समाज के अल्पसंख्यक विशिष्ट वर्ग, सेना एवं नौकरशाही के सहयोग से अंग्रेज शासकों ने भारतीयों पर लम्बे समय तक शासन किया। लेकिन, समाज का मध्यम वर्ग ब्रिटिश हुकूमत का जबर्दस्त विरोधी था। स्वाधीनता संघर्ष में मध्यम वर्ग के द्वारा सक्रिय भूमिका निभायी गयी। प्रो. रजनी कोठारी की प्रसिद्ध

पुस्तक 'पॉलिटिक्स इन इंडिया' में भारतीय राजनीति को समझने के लिए पश्चिमी दृष्टिकोण का खंडन किया गया है और पूरी तरह नये एवं संपूर्ण दृष्टिकोण की प्रस्तुति की गयी है जिसका निर्माण भारतीय समाज की शर्तों पर किया गया है। किसी भी राजनीतिक व्यवस्था की कामयाबी की सबसे बड़ी कसौटी यह है कि वह बदलते वक्त के अनुरूप अपने समाज की मांगों को पूरा कर सके। आजाद भारत की लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था की कामयाबी दो शर्तों पर टिकी थी : **पहला**, राजनीतिक इकाइयों की संरचना और **दूसरा**, वह मूल्य जो इकाइयों के कार्य निष्पादन का आधार तत्त्व होता हैं। राजनीतिक इकाइयों को सामाजिक–आर्थिक हक़ीकतों का सामना एवं समाधान करते हुए समाज के विकास तथा समुन्नति के लिए आवश्यक फैसला लेना था और उन फैसलों के ठोस कार्यान्वयन के लिए समाज पर दबाव भी बनाये रखना था। दूसरी समस्या परम्परागत मूल्यों मान्यताओं, आस्थाओं से प्रासंगिक थी। एक जटिल और परम्पराबद्ध समाज में नवजात लोकतांत्रिक राज्यव्यवस्था को सफलतापूर्वक कार्य निष्पादन करते रहने के लिए सामाजिक समस्याओं का पुनर्मूल्यांकन करते रहना अति आवश्यक था।

भारतीय नेतृत्व द्वारा राजनीति एवं समाज से संदर्भित इन मूल्यों को साकार कर नवस्वतंत्र व्यवस्था के विकास के लिए एक विशिष्ट मार्ग पर क़दम बढ़ाया गया और कुछ विशेष उद्देश्यों को अपना संकल्प बनाया गया। इस संकल्प में चार मौलिक उद्देश्य निहित थे **पहला**, एक बेहद जटिल विविधतामूलक खंडित संरचनाओं वाले सामाजिक ढाँचे का राष्ट्रीय एकीकरण करना। **दूसरा**, उस आबादी का जीवन स्तर बढ़ाने के लिए आर्थिक विकास कार्यक्रमों एवं योजनाओं का क्रियान्वयन करना, जिनकी आय का स्तर लगभग एक सदी से या तो स्थिर था या गिरता जा रहा था। **तीसरा**, सदियों से असमानता के सिद्धान्त पर जीने वाले समाज में समानता कायम करना। **चौथा**, एक ऐसी परम्परागत संस्कृति में राजनीतिक लोकतंत्र का कार्यान्वयन करना जो विभिन्न संवर्गों सामाजिक स्तरीकरण, प्रस्थिति और सामाजिक दर्जाबंदी पर आधारित था और सत्ता एक छोटे अभिजन वर्ग के हाथों में सीमित थी। आजाद भारत की राजनीति को अपने समाज के अतीत से जो धरोहर मिली थी वह विस्तृत, अनुदार, अराजनीतिक तथा दर्जाबन्दी ढाँचे पर आधारित समाज की थी, लेकिन इस परम्पराबद्ध अतीत की विरासत में उन महत्त्वपूर्ण तत्त्वों की उपस्थिति भी शामिल थी जिनके विद्यमानता (Presence) की वजह से सर्जनात्मक संभावनाओं का उपयोग करते हुए समकालीन राजनीतिक नेतृत्व द्वारा राजनीतिक लोकतंत्र संस्थापित किया गया और लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया को मजबूती प्रदान की गयी।

भारतीय नेतृत्त्व द्वारा दृढ़चेता (Strong-willed) अभिवृत्ति का प्रदर्शन करते हुए व्यवस्था–निर्माण एवं संचालन के प्रसंग में राजनीतिक लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया को विकास संबंधी सम्पूर्ण कार्ययोजना का केन्द्रीय तत्त्व बनाया गया, साथ ही राज्य–निर्माण, राष्ट्र–निर्माण, आर्थिक संवृद्धि (Growth) और समतावादी सामाजिक व्यवस्था का निर्माण जैसी महत्त्वपूर्ण प्रक्रियाओं को लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया पर आश्रित कर दिया गया। राजनीतिक लोकतंत्र की संस्थापना और लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं के कार्यान्वयन से परम्पराबद्ध और दकियानूसी सामाजिक ढाँचे को बदलने की कोशिश शुरू की गयी। इस बदलाव को सार्थक आयाम प्रदान करने के लिए सामाजिक सत्ता के स्वरूप में परिवर्तन लाया गया। सत्ता का आधार उत्तराधिकार में मिले दर्जे की जगह संख्या रूपी शक्ति यानी कि जनशक्ति को बनाया गया। पारम्परिक रूप से सामाजिक सत्ता को अपनी पैतृक संपत्ति (Heritage) समझने वाली मुट्ठीभर जातियों एवं लोगों के ख़िलाफ़ समाज के उन जातियों के लोगों में चेतना जगायी गयी जो अब तक प्रजा की श्रेणी में आते थे। नवजात लोकतंत्र में मौजूद बहुल समाज, सांस्कृतिक विविधताओं तथा आर्थिक पिछड़ेपन की विद्यमानता के बीच लोकतांत्रिक प्रक्रिया को सकारात्मक गति प्रदान करने के लिए जाति, समुदाय और धर्म जैसे सामाजिक प्रसंगों से इतर कार्ययोजना के केन्द्रीय तत्त्व में धर्मनिरपेक्षता को प्रधानता दी गयी, ताकि भारत का बहुल समाज राजनीतिक लोकतंत्र को कायम करने में किसी प्रकार से बाधक न बन सके। उदारवादी लोकतांत्रिक सिद्धान्तों से उपजे मूल्यों, मान्यताओं, विश्वासों तथा इन्हें पोषित करने वाली इकाइयों और उन्हें यथार्थ की जमीन पर उतारने वाली व्यावहारिक राजनीतिक कार्ययोजनाओं ने मिलजुल कर सार्थक प्रयासों द्वारा कई रूपों में विभाजित तथा मूलतः बहुल और खंडित समाज के समस्त आयामों को जोड़ने का सूत्र प्रदान किया। भारतीय लोकतांत्रिक राजनीति की यह बहुत बड़ी उपलब्धि थी क्योंकि ऐसे राजनीतिक लोकतंत्र की संस्थापना द्वारा अनेकानेक सामाजिक विविधताओं के बीच एकता की शक्ति अर्जित की गयी। इस प्रकार खंडित संरचनाओं वाले पारम्परिक भारतीय समाज को राजनीतिकरण के जरिये आधुनिक बनाना, राष्ट्रीय एकीकरण का लक्ष्य हासिल करना तथा समाज में मौजूद इतनी बड़ी विविधताओं को एकीकृत करना सिर्फ मजबूत इरादों वाली लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से संभव हो पाया।

आजाद भारत की राजनीति पर मुख्य रूप से निम्नलिखित चार कारकों का सीधा प्रभाव पड़ा है : यथा– 1. प्राचीन हिन्दू समाज का प्रभाव, 2. भारत में आये विदेशी मुसलमान शासकों का प्रभाव, 3. ब्रिटिश शासकों का प्रभाव और 4. स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान एशिया में उदित हुए राष्ट्रवाद और नवजागरण का प्रभाव।

मोटे तौर पर ईसा पूर्व दसवीं से पंद्रहवीं सदी के बीच हिन्दू समाज व्यवस्था का अस्तित्व निर्माण हुआ। यह वही समय था जब दक्षिण–मध्य एशिया से धीरे–धीरे आये आर्यों के कबीले भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तरी और पश्चिमी हिस्सों में भारी संख्या में आकर बसने, लगे थे। हिन्दू साम्राज्य की विद्यमानता की अवधि तो छोटी रही लेकिन उसकी ऐतिहासिक विरासत के रूप में उपस्थित बहुमूल्य साहित्यिक–सांस्कृतिक कृतियों एवं हिन्दू महाकाव्यों का भारतीय जनमानस पर गहरा प्रभाव पड़ा।

इस महान् अतीत की पुनर्व्याख्या के जरिये आधुनिक भारत का पुनर्जागरण किया गया। हिन्दू समाज की विरासत के राजनीतिक महत्त्व की सबसे बड़ी उपलब्धि एक असाधारण सामाजिक व्यवस्था की रचना थी, जिसके तहत परम्परागत मूल्यों व मान्यताओं को विकसित करने में कामयाबी मिली। जातियों का ढीला–ढाला अस्तित्व आदिम जमाने में आर्यों के आगमन के पूर्व भी मौजूद था। आर्यों द्वारा इस पर चार वर्णों की दर्जाबन्दी व्यवस्था आरोपित की गयी। मौलिक रूप से विवाह और नातेदारी पर आधारित इस सामाजिक संरचना की एक राजनीतिक भूमिका भी थी जो सामाजिक विवादों के निबटारे से संबद्ध थी। धीरे–धीरे व्यवस्था में निहित स्वार्थों की उपस्थिति पूरे दम–खम से होने लगी और समयानुसार इसकी जड़ें मजबूत होती गयीं। आर्यों द्वारा सामाजिक ढाँचे में जातियों को ब्राहाण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र चार वर्णों में बाँटा गया। ब्राह्मण को ज्ञान, क्षत्रिय को प्रतिरक्षा, वैश्य को संपत्ति और शूद्र को समाज में श्रम की जवाबदेही प्रदान की गयी। इस प्रकार, वर्ण व्यवस्था, जाति प्रथा, अराजनीतिक समाज, धर्म तथा नैतिकता से ओत–प्रोत राजनीतिक मूल्य आदि तत्त्व भारतीय राजनीति को हिन्दू समाज की देन है। लेकिन, ये समस्त प्रावधान हिन्दू समाज व्यवस्था की सैद्धान्तिक आधारभूमि हैं जिससे व्यवहार का स्वरूप काफी अलग है।

1206 ई. में दिल्ली सल्तनत की स्थापना के उपरान्त 1526 ई. से 1707 ई. तक भारत पर मुगल शासकों का दबदबा कायम रहा। 1709 ई. में औरंगजेब की मृत्यु होने के पश्चात् प्रतीकात्मक रूप से मुगल सत्ता 1857ई. तक कायम रही। अंग्रेजी हुकूमत के हाथों 1862 ई. में औपचारिक रूप से मुगल साम्राज्य की समाप्ति हुई। मुगल शासकों द्वारा नागरिक प्रशासन के क्षेत्र में कई प्रकार का उल्लेखनीय कार्य किया गया। लेकिन, साथ ही इनके शासकों द्वारा धर्म परिवर्तन को बढ़ावा दिया गया। मौलवियों को विशेषरूप से उत्तर भारत की आबादी को धर्म परिवर्तन के लिए प्रोत्साहित किया गया, इस वजह से दोनों पक्षों के बीच कई बार कट्टरता और घृणा का बड़े ही प्रबल रूप में सामने आया। लेकिन बाद में धीरे–धीरे दोनों समाज एक दूसरे से प्रभावित होने लगे। मुस्लिम सत्ता के प्रभाव में आयी गिरावट के बाद में हिन्दुओं में प्रचलित जाति और व्यवसाय के कुछ स्वरूपों को मुसलमानों द्वारा अपनाया गया, तो हिन्दुओं ने भी उनके कई सामाजिक रीति–रिवाज एवं प्रशासनिक तौर–तरीकों को अपनाया। दोनों ने एक दूसरे की संस्कृति से बहुत कुछ सीखा, लेकिन बावजूद इसके दोनों धर्मों के आधार पर समाज की दो व्यवस्थाएं कायम रहीं। मुस्लिम शासकों की राजनीतिक शैली की एक ख़ासियत अधिनायकवादी केन्द्र की स्थापना की प्रवृति के साथ–साथ कानून व्यवस्था को लागू करना और राजस्व उगाही के लिए एक कुशल प्रशासन की स्थापना करना भी था। लेकिन, भारतीय समाज के परिप्रेक्ष्य में मुस्लिम शासन की पूरी कालावधि को अशांत अवधि की कोटि में रखा जाता है, क्योंकि मुसलमान शासकों द्वारा हिन्दू समाज व्यवस्था में संस्थापित संतुलन को अस्थिर कर दिया गया था। समकालीन समाज और धर्म का आपसी संतुलन गड़बड़ा गया। नतीजे के तौर पर हिन्दू समाज अपनी स्वाभाविक गति और जीवन्तता से दूर हो गया। लेकिन, यह प्रभाव अस्थायी था क्योंकि अंग्रेजी हुकूमत के आते ही मुसलमान शासन के दुष्प्रभावों से हिन्दू समाज धीरे–धीरे मुक्त होने लगा।

भारतीय समाज पर ब्रिटिश हुकूमत का बेहद परिवर्तनकारी प्रभाव पड़ा। दोनों के मध्य सांस्कृतिक विजातीयता होने की वजह से पड़ने वाले प्रभाव में गहराई तो नहीं थी, लेकिन प्रभाव की व्यापकता मजबूती और टिकाऊपन का दायरा अत्यन्त विस्तृत था। अंग्रेजी सत्ता द्वारा पहली बार भारत उपमहाद्वीप को पूर्णरूप से एक साम्राज्य की सत्ता के दायरे में लाया गया। मुसलमान शासन के दौर में हमेशा अशांति और असुरक्षा के भय से ग्रसित भारतीय समाज को ब्रिटिश हुकूमत की कालावधि में कानून व्यवस्था के साये में जीने का अवसर मिला। अंग्रेजी सत्ता द्वारा प्रशासन और न्याय संबंधी धारणाएं स्थापित की गयी। ब्रिटिश शासकों द्वारा एकल प्राधिकार के साथ–साथ एकीकृत और अपेक्षाकृत समरूप प्रशासन की स्थापना भी की गयीं। उनके द्वारा भारत में खुली प्रतियोगिता के आधार पर आधुनिक नौकरशाही के प्रशासनिक ढाँचे का निर्माण किया गया। धीरे–धीरे भारत में अंग्रेजों द्वारा न्यायिक व्यवस्था का ढाँचा भी खड़ा किया गया जिसका आधार–माध्यम एंग्लोसेक्सन न्यायिक सिद्धान्त और प्रक्रिया था। इसके उपरान्त, जनहित आधार पर सामाजिक–आर्थिक प्रशासन की स्थापना की गयी जिसकी वजह से कई प्रकार की सामाजिक विषमताओं के विरुद्ध निर्णय लेने में सहायता मिली। ब्रिटिश सत्ता द्वारा भारत के हाई स्कूलों और कॉलेजों में अंग्रेजी भाषा की पढ़ाई की शुरुआत करके देश में मध्यवर्ग की रचना में अहम् भूमिका निभायी गयी। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि ब्रिटिश शासन अपनी प्रभावशालिता के संदर्भ में काफी परिवर्तनकारी साबित हुआ, लेकिन इसके बदले उन्हें भारतीय समाज की ओर से गंभीर प्रतिक्रिया और विरोध–विद्रोह का सामना करना पड़ा। स्वाधीनता संघर्ष के रूप में लम्बे विरोध और विद्रोह के परिणामस्वरूप भारतीयों को अंग्रेजी हुकूमत से आजादी मिली।

स्वाधीनता से पूर्व भारतीय राष्ट्रवाद के उद्भव और विकास में सामाजिक एवं धार्मिक नवजागरण का अमूल्य सहयोग है। उन्नीसवीं शताब्दी तक भारत में सामाजिक–धार्मिक दृष्टि से चारों ओर अन्धकार ही छाया था। एक ओर जहां समाज अज्ञानता, अन्धविश्वास, कुप्रथाओं एवं रूढ़ियों से ग्रसित था, जिसकी वजह से बाल विवाह एवं सती प्रथा का प्रचलन जोरों पर था और विधवा विवाह निषिद्ध था। जाति प्रथा और छुआछूत जैसी गंभीर बीमारी की वजह से सामाजिक वातावरण खंडित और विषम रूप धारण कर चुका था, वहीं दूसरी ओर धर्म के नाम पर कर्मकाण्ड और मूर्ति पूजा का आडम्बर चारों ओर फैल रहा था। साथ ही, पूर्व में ईसाई धर्म प्रचारक हिन्दुओं की सभ्यता–संस्कृति और धर्महीनता का जोर–शोर से प्रचार कर रहे थे। ऐसी परिस्थिति में भारत के सुशिक्षित समाज के पुरोधाओं और धर्म सुधारकों का ध्यान भारतीय समाज की इस विषम

परिस्थिति की ओर गया। इन सुधारकों द्वारा भारतीय संस्कृति और धर्म की श्रेष्ठता की स्थापना को ध्यान में रखते हुए पुनर्जागरण हेतु कुछ प्रमुख सामाजिक व धार्मिक आन्दोलनों की शुरुआत की गयी और इसे नेतृत्व प्रदान किया गया, इनमें प्रमुख हैं : 1. **ब्रह्म समाज**–उन्नीसवीं शताब्दी में 1828 ई. में इसकी स्थापना राजा राम मोहन राय ने की। 2. **आर्य समाज**–उन्नीसवीं शताब्दी का यह दूसरा सामाजिक–धार्मिक आन्दोलन था जिसकी स्थापना 1875 ई. में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने की थी। 3. **रामकृष्ण मिशन**–यह स्वामी रामकृष्ण परमहंस की स्मृति में 1896 ई. में स्थापित हुआ। 4. **थियोसोफिकल सोसाइटी**–यह आन्दोलन भारतीय राष्ट्रीयता को बढ़ाने में काफी सहायक रहा जिसकी स्थापना 1875 ई. में न्यूयार्क में एक रूसी महिला मैडम क्लेवत्सकी तथा एक अमेरिकी सैनिक अफसर कर्नल आल्कॉट ने की थी। 5. **मुसलमानों का सुधार आन्दोलन**–उन्नीसवीं शताब्दी में विशेष रूप से दो आन्दोलनों 'बहावी आन्दोलन' और 'अलीगढ़ आन्दोलन' द्वारा मुसलमानों ने इस्लाम धर्म के सुधार के लिए गंभीर प्रयास किया।

इन सभी सामाजिक आन्दोलनों के प्रयास से हिन्दू धर्म में व्याप्त जड़ताओं एवं कुरीतियों को दूर करके समाज को स्वस्थ स्वरूप प्रदान करने का प्रयास किया गया। भारतीयों में अपनी परम्परागत सभ्यता–संस्कृति के प्रति विश्वास जगाया गया और राष्ट्रवाद की भावना जगाकर राजनीतिक जागृति पैदा की गयी, जिससे आम भारतीय का आत्मविश्वास मजबूत हुआ और उनमें देश प्रेम की भावना प्रबल हुई।

ऊपर विवेचित प्रसंगों में भारतीय पारम्परिक समाज की राजनीतिक पृष्ठभूमि का खुलासा संक्षेप में किया गया है, अब भातीय राजनीति और समाज के संबंधों पर विशेष रूप से प्रकाश डाला जा रहा है।